विकृत मूल्य नीतियों की ओर

डॉ० रमेश चन्द – निदेशक, राष्ट्रीय कृषि आर्थिक एवं नीति अनुसंधान केन्द्र

हाल ही के वर्षों में कृषि मूल्यों को लेकर सभी स्तरों पर दिन प्रतिदिन असंतोष बढ़ रहा है। किसी भी किसान या उत्पादक से बात करें तो यह शिकायत करेगा कि उसे उसके उत्पादन का लाभकारी मूल्य नहीं मिल रहा है। दूसरी ओर, किसी भी उपभोक्ता से बात करें वह कहता है कि उसे अपने पैसे का उचित लाभ नहीं मिलता। इस प्रकार की विकृत स्थिति कैसे उत्पन्न हो गई ? इसके वास्तविक कारण हैं कि किसान असंतुष्ट हैं इसका प्रमुख कारण है कि उनकी कृषि कटाई फसलों (एफएचपी) का मूल्य न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम मिलता है। जब ऐसा होता है तो उन्हें महसूस होता है कि सरकार उनसे विश्वासघात कर रही है और सरकार का भी मानना है कि इससे अधिक मूल्य तो उनको मिलना ही चाहिए किन्तु जब वह मूल्य किसानों को नहीं मिल पाता है तो सरकार भी अपनी आंखें बंद कर लेती है।

जैसे–जैसे न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाने के बारे में किसानों को पता चलता है तो वे इस प्रकार के व्यवहार से विश्वासघात महसूस करते हैं क्योंकि बहुत से बाजारों में और बहुत सी जिंसों के लिए सरकार न्यूनतम समर्थन मूल्य नहीं देती है। जब सरकार ने गेहूं का न्यूनतम समर्थन मूल्य 1280/– रू. कर दिया था तो वह मूल्य देश के 3 या 4 राज्यों के किसानों को तो मिला किन्तु अन्य राज्यों के किसानों को नहीं। ऐसा ही धान और अन्य फसलों के लिए भी होता है।

दूसरा कारण यह है कि कृषि कटाई फसल मूल्य (एफएचपी) और परचून मूल्यों के बीच की दूरी बढ़ रही है जैसा हाल ही की बढ़ती हुई खाद्य मुद्रा स्फिति से देखा जा सकता है। कृषि फसल मूल्य बढ़ा दिया गया है किन्तु बहुत से मामलों में परचून या थोक मूल्यों की वृद्धि से यह आधा भाग ही होता है। पर्याप्त साक्ष्य हैं कि खाद्य मुद्रा स्फिति बढ़ रही है, किन्तु बढ़ते हुए मूल्यों का लाभ बिचौलियों को मिल रहा है न कि किसानों को। कृषि फसल मूल्य में लगभग 5 प्रतिशत की वृद्धि हुई है किन्तु थोक मूल्यों में लगभग 10 से 11 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है।

तीसरा कारण है कि कृषि और कृषि से संबंधित कार्यों से होने वाली कृषि आय और किसानों की आय उतनी नहीं बढ़ती जितना किसान के परिवार का खर्चा बढ़ जाता है। इसका सीधा अर्थ है कि किसानों की आय नहीं बढ़ रही है, कम से कम उनके आवश्यक प्रत्यक्ष स्तर के खर्चों तक। जहां तक राष्ट्रीय स्तर पर कृषि आय की वृद्धि दर का संबंध है यह सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर से कम नहीं है। जहां तक कि पिछले 7 से 8 वर्षों में समेकित स्तर पर कृषि आय 3 से 4 प्रतिशत बढ़ी है किन्तु किसान के परिवार का खर्चा उससे कई गुणा बढ़ चुका है। इसका कारण शिक्षा, चिकित्सा व्यय, आवास और अन्य प्रकार की सुविधाओं की लागत में वृद्धि होना है। कृषि और गैर कृषि साधनों से प्राप्त होने वाली आय की वृद्धि दर उतनी नहीं बढ़ी जितना खर्चा बढ़ रहा है।

हम ऐसी स्थिति का सामना कर रहे हैं जहां पर मूल्य की आर्थिक स्थिति प्रत्येक स्तर पर अपना आधार खो रही है कि मूल्यों का निर्धारित मांग और आपूर्ति के आधार पर होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि मूल्य उसके हित के अनुसार होने चाहिए किन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि सरकार इस स्थिति का कैसे सामना करती है। सरकार इस पर 2 प्रकार से प्रतिक्रिया करती हैः खरीद स्तर पर न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करके प्रत्यक्ष

हस्तक्षेप या अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप करके, बाजार के लिए विनियम बनाकर, आधारभूत सुविधाएं, संस्थाएं स्थापित करके, व्यापार नीति और शुल्क आदि लगाकर।

पिछले कुछ समय से सरकार ने प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करने की पद्धति में परिवर्तन कर लिया है। 70 के दशक के आरंभ में उपभोक्ताओं पर विशेष ध्यान दिया जाता था। जैसा प्रोफैसर दंतवाला ने कहा : गरीबों के लिए सस्ता अनाज उपलब्ध कराना तत्कालिक समाजवाद है, यद्यपि सभी बातें करते हैं समाजवाद की, यदि किसी गरीब व्यक्ति को उचित मूल्य पर अनाज मिल जाता है तो इसका अर्थ हुआ तत्कालिक समाजवाद। इस प्रकार 70 के दशक में न्यूनतम समर्थन मूल्यों में न के बराबर वृद्धि की जाती थी। कई वर्षों तक न्यूनतम समर्थन मूल्य को स्थिर रखा गया या 1 रूपया या 2 रू० प्रति क्विंटल की ही वृद्धि की जाती थी। वास्तव में उस सयम 5 या 6 रू० प्रति क्विंटल बढ़ाना बहुत बड़ी वृद्धि माना जाता था। 70 के दशक के दौरान ही प्रति व्यक्ति मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों से कम थे किन्तु इसका वृद्धि पर कुछ विपरीत प्रभाव भी पड़ता था। उत्पादन में वृद्धि बहुत कम थी क्योंकि उपभोक्ताओं का ही ध्यान रखा जाता था और किसानों की चिंता नहीं की जाती थी। इसमें परिवर्तन करना था। समय के साथ–साथ किसान राजनीति में भी सक्रिय हो गए और अपनी–अपनी चिंताओं को कारगर ढंग से कहना शुरू किया जिससे लगभग सभी पार्टियों के राजनीतिक निर्णयों में परिवर्तन हुआ।

80 के दशक में उपभोक्ताओं पर ही ध्यान न देकर उत्पादकों या किसानों पर ध्यान दिया जाने लगा और मूल्य वृद्धि होने की स्थिति बढ़ती चली गई क्योंकि सरकार ने किसानों पर विशेष ध्यान देना शुरू कर दिया था। उन्हें अत्यधिक आर्थिक सहायता दी जाती थी, अत्यधिक उत्पादन हो जाता था और मुझे याद आता है कि एक अखबार ने लिखा था कि खुले बाजार मूल्य या लागत की तुलना में न्यूनतम समर्थन मूल्य में अन्तर रखा जाएगा तो माल के उत्पादन में उतार चढ़ाव उतना ही अधिक होगा। जिंसों का भण्डार बढ़ने लगा और इस प्रकार की चीजें तो होनी ही थी क्योंकि खुले बाजार के मूल्यों को नजरअंदाज किया गया था।

90 के दशक के मध्य से अन्य भागीदारों (स्टेक होल्डर) ने बड़े पैमाने पर इस कारोबार में प्रवेश किया जिन्हें व्यापारी या बिचौलिये कहा जाता है। इस समूह ने अपने आपको संगठित किया और सरकार को तब 3 समूहों के हितों का ध्यान रखना था, वे थे उत्पादक या किसान, उपभोक्ता और व्यापारी तथा समय बीतने के साथ–साथ इस समूहों को ध्यान में रखते हुए नीतियां तैयार की जाने लगी और कमजोर मण्डियों पर ध्यान नहीं दिया गया और न ही विकास परिदृश्य पर ध्यान केन्द्रित किया गया।

पिछले 10–15 वर्षों में क्या हो रहा है ? सरकार उत्पादकों को अधिक से अधिक मूल्य प्रदान कर रही है, यद्यपि इससे सभी परिणाम अव्यवस्थित हो गए हैं, कुछ राज्यों में बहुत से मामलों में तो देखा गया है कि उत्पादन की लागत से 50 प्रतिशत अधिक का न्यूनतम समर्थन मूल्य दिया जा रहा है। दूसरी तरफ उपभोक्ता को भी खुश रखा जाता है क्योंकि सस्ता अनाज लेने के लिए उनकी खाद्य आर्थिक सहायता बढ़ा दी जाती है, और तीसरा समूह है बिचौलियों का जो अति महत्वपूर्ण बन चुका है। उसे भी प्रसन्न रखने के लिए मण्डियों का विकास रोक दिया जाता है, प्रतिस्पर्धा हेतु निरूत्साहित किया जाता है, कृषि उत्पाद विपण समिति (एपीएमसी) के अधिनियम को भी प्रोत्साहित नहीं किया जाता जिसके द्वारा भारत में कृषि मण्डियों को नियमित किया जाता है, इसके अतिरिक्त अन्य सुधारों को भी नहीं अपनाया जाता। बिचौलिए किराया लेते ही हैं चाहे वे सेवा उपलब्ध कराएं या नहीं। इन तीनों समुहों ने एक त्रिकोण बना लिया है जिसके कारण सरकारी नीतियां फंस जाती हैं और सभी बाजार सुधारों की गति भी धीमी पड़ जाती है।

इससे भी बदत्तर यह है कि इस प्रकार की नीतियों से केन्द्र और राज्यों के बीच विवाद बढ़ गया है, केन्द्र सरकार कुछ करना चाहती है किन्तु राज्य सरकारें सुनती ही नहीं हैं। जब राज्य केन्द्र से कुछ चाहते हैं तो केन्द्र भी नजरअंदाज कर देता है और बाजार की अगली स्थिति में सुधार का भी ध्यान नहीं रखा जाता – जैसे सरकार मूल्य हस्तक्षेप के माध्यम से कुछ सुधार करना चाहे और सरकार द्वारा ही कुछ और नियम लागू करने जैसे उपायों में विलम्ब हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप से बाजार की स्थिति बिगड़ जाती है और विकास नहीं हो पाता तथा सभी का ध्यान इन तीनों समूहों को संतुष्ट करने की ओर चला जाता है। बाजार विकास की बात समाप्त हो चुकी है, प्रतिस्पर्धा नहीं है, मण्डियों का रख रखाव अच्छा नहीं है तथा उनमें अत्यधिक भीड़ है क्योंकि छोटे–छोटे व्यापारी भी इसमें से अधिक से अधिक लाभ चाहते हैं। खेतों की भूमि खण्डित हो चुकी है और उत्पादक और उपभोक्ताओं के बीच भी आपूर्ति की लम्बी चेन है जिसमें 6 से 7 ट्रांजैक्शन्स होती हैं और प्रत्येक ट्रांजैक्शन के लिए कीमत अदा करनी पड़ती है। इस कारण से मूल्य की स्थिति विकृत होती जा रही है।

यहां तक कि न्यूनतम समर्थन मूल्य की बाजार के मूल्यों से कोई समानता नहीं है क्योंकि लोगों को तब ही लाभ मिलता है जब सरकार ही जिंसों की खरीद करे। अन्य स्थानों पर उत्पादक किसान प्रभावित होते हैं और यह कृषि क्षेत्र की एक अन्य विकृति है। बाजार की दयनीय स्थिति का समाधान केवल न्यूनतम समर्थन मूल्य हो सकता है और इसके लिए प्रत्येक कृषि जिंस की खरीद करनी होगी। उत्पादक जानते हैं कि सरकार कहां पर न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करती है और कहां पर खरीदें करती है इस कारण उन स्थानों पर उत्पादन का मूल्य अधिक होता है और जहां पर सरकार खरीद नहीं करती है। प्रश्न यह है कि क्या न्यूनतम समर्थन मूल्य किसानों की इस समस्या के लिए रामबाण हो सकता है ? क्या कोई देश प्रत्येक किसान को न्यूनतम समर्थन मूल्य का लाभ दे सकता है ? इससे कई प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो जाएंगी।

यदि खरीद के माध्यम से न्यूनतम समर्थन मूल्य (व्यवहारिक रूप में सरकार खुले बाजार मूल्य से कुछ अधिक न्यूनतम समर्थन मूल्य नियत करती है) को लागू किया जाता है तो 100 प्रतिशत उपजें सरकार के पास आएंगी या कोई भी जिंस सरकार के पास नहीं आएगी। यदि खुले बाजार मूल्यों से न्यूनतम समर्थन मूल्य अधिक है तो कोई भी निजी कम्पनी इन जिंसों की खरीद नहीं करेगी। यदि न्यूनतम समर्थन मूल्य कम है तो सरकार के पास कोई नहीं आएगा और सभी किसान निजी व्यापारियों को ही अपना माल बेचेंगे। सरकार इस स्थिति से कैसे निपटती है ? सरकार क्षेत्रीय भिन्नताओं के आधार पर ऐसा करती है, यह कुछ क्षेत्रों में खरीदें सीमित कर देती है। इसके लिए शिकायतें आती हैं और देखा जा सकता है कि पिछले 4 दशकों में सभी किसानों के उत्पादन के लिए समान मूल्य नहीं दिया जाता। यह पूर्णतः पक्षपातपूर्ण होता है और सरकार केवल कुछ चुने हुए क्षेत्रों से ही खरीदें करती है।

सरकार अकेले हर सुविधा प्रदान नहीं कर सकती किन्तु सरकार आधुनिक पूंजी के मण्डियों में प्रवेश करने में आने वाली बाधाओं को तो हटा सकती है। नए व्यापारियों के लिए कृषि क्षेत्र में पर्याप्त अवसर हैं और इस क्षेत्र में अधिक निवेश करने वाले भी तैयार हैं किन्तु इस क्षेत्र का वातावरण, नियम और संस्थाएं सहायक (फ्रेन्डली) नहीं हैं। इन पर ध्यान देने की आवश्यकता है – नियम और इनके कानूनी पहलू – इसके साथ–साथ अच्छी आधारभूत सुविधाओं के अतिरिक्त उत्पादकों/किसानों को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

संपादकीय

जनसंख्या वृद्धि से उत्पादकता की मांग लगातार बढ़ी है और लगभग 10,000 वर्ष पहले जब खेती आरंभ की गई थी तब से हमने पीछे मुड़ कर नहीं देखा। कहा जाता है कि वातावरण या परिस्थितियां वैसी ही हो जाती हैं जैसा हम उन्हें बनाते हैं। आदिकाल के समय से जब मनुष्य शिकार करते थे और खाने का सामान इकट्ठा करते थे, उनमें से कुछ लाख लोग ही धरती पर जिन्दा बच पाए थे। किंतु, तकनीकी में सुधार होने से हमने खेती करना सीखा और निरंतर उत्पादन बढ़ा रहे हैं; विश्व की जनसंख्या वर्तमान में बढ़कर 7.2 अरब हो चुकी है। वर्ष 2050 तक यह 9 अरब तक पहुंच जाएगी। इसके परिणाम स्वरूप हमें अगले 50 वर्षों में उतना उत्पादन करना होगा जितना हमने लगभग पिछले 10,000 वर्ष में किया था। यह उस परिस्थति में करना होगा जब जलवायु में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। इससे 23.5 डिग्री उत्तर, जिसे कर्क रेखा कहा जाता है, और 32 डिग्री उत्तर के बीच का क्षेत्र लगभग उजड़ जाएगा। यह क्षेत्र भारत की कृषि के गंगा समतल क्षेत्र का मध्य क्षेत्र है। हमें क्या करना चाहिए, हमें कृषि अनुसंधान और विकास में निवेश करने की तैयारी करनी चाहिए।

सच्चाई यह है कि कृषि अनुसंधान और विकास पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है क्योंकि खाद्य मुद्रास्फीति 3 वर्ष में सबसे अधिक हो चुकी है और आपूर्ति से बढती हुई मांग पूरी नहीं हो पा रही है। किसान मूल्य अस्थिरता, जलवायु परिवर्तन/आपदा या अपने को गरीबी से नहीं निकाल पा रहे हैं, इस कारण वे कुपोषण का निरंतर शिकार हो रहे हैं। संयोगवश कृषि अनुसंधान और विकास में निवेश दूसरा ऐसा कारगर तरीका है जिससे निर्धनता ओर कुपोषण समाप्त हो सकता है और इसके बाद ग्रामीण सडकों के विकास का नंबर आता है। कृषि अनुसंधान में निवेश की गति धीमी हो चुकी है।

कृषि अनुसंधान और विकास के क्षेत्र में निजी क्षेत्र का व्यय बडी मात्रा में है। सैद्धांतिक रूप से कागजों पर भारत कृषि विकास में अधिक निवेश करता है किंतु इस निवेश का अधिकतम भाग विश्वविद्यालयों को चलाने और वेतन देने में खर्च हो जाता है। मेरा मानना है कि बहुत कम राशि अनुसंधान पर खर्च की जाती है और जब निजी कंपनियों के व्यय से तुलना की जाती है तो बहुत कम राशि अनुसंधान पर खर्च की जाती है। यदि हम भारत सरकार के आंकडों की प्रत्यक्ष मूल्य (फेस वैल्यू) पर गणना करें तो भारत चीन की तुलना में केवल आधा भाग

कृषि अनुसंधान और विकास पर खर्च करता है। अमरीका के कृषि सकल घरेलू उत्पाद से 10 गुना कम भारत खर्च करता है और कुल घरेलू सकल उत्पाद के प्रतिशत में से भी भारत ब्राजील, मलेशिया और केन्या जैसे देशों से भी बहुत कम खर्च करता है।